

## अस्तित्ववाद और मानव जीवन की संपूर्णता: मध्यस्थ दर्शन एवं नई शिक्षा नीति 2020 के आलोक में एक सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन

सोनिका निम

व्याख्याता (DOE), शोधार्थी,  
लोक जागृति विश्वविद्यालय, गुजरात  
एवं

सुरेन्द्र कुमार पाठक

लोक जागृति विश्वविद्यालय, गुजरात

### सारांश

मानव जीवन के अर्थ, उद्देश्य और पूर्णता का प्रश्न सदैव से दार्शनिक विमर्श का केंद्र रहा है। आधुनिक युग में अभूतपूर्व तकनीकी प्रगति और भौतिक समृद्धि के बावजूद व्यक्ति के भीतर अकेलेपन, पहचान-संकट, चिंता और गहरी अपूर्णता की अनुभूति निरंतर बढ़ रही है। पश्चिमी अस्तित्ववाद — जैसा कि Kierkegaard, Nietzsche, Sartre और Camus ने प्रतिपादित किया — ने मानव अस्तित्व के केंद्र में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, प्रामाणिक चयन और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को स्थापित किया। यद्यपि इस दार्शनिक परंपरा ने व्यक्ति की स्वायत्त संभावना को प्रकाशित किया, परंतु इसने प्रायः व्यक्ति को उस सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ से काट दिया जिसमें अर्थ-निर्माण अनिवार्यतः होता है।

इसके विपरीत भारतीय दार्शनिक परंपराएँ मानव जीवन को संबंध, संतुलन और सह-अस्तित्व के परिप्रेक्ष्य में देखती हैं। धर्म, ऋत, कर्म और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जैसे सिद्धांत यह प्रतिपादित करते हैं कि मानव पूर्णता पृथक्ता या विद्रोह से नहीं, बल्कि पारिवारिक, सामाजिक एवं पारिस्थितिक संजाल में सामंजस्यपूर्ण भागीदारी से प्राप्त होती है। मध्यस्थ दर्शन — श्री ए. नागराज द्वारा प्रतिपादित सह-अस्तित्व दर्शन — इस अंतर्दृष्टि का एक सुव्यवस्थित दार्शनिक प्रतिपादन है। यह अस्तित्व को मूलतः संबंधात्मक मानता है और मानव जीवन के चार समेकित आयामों — भौतिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक — के संतुलित विकास को वास्तविक मानव पूर्णता का आधार बताता है।

यह शोध-पत्र पश्चिमी अस्तित्ववादी चिंतन और भारतीय सह-अस्तित्ववादी दृष्टिकोण के मध्य संवाद स्थापित करते हुए मानव पूर्णता की अधिक संपूर्ण एवं सामाजिक रूप से अन्तर्निहित समझ का निर्माण करने का प्रयास करता है। यह अध्ययन तुलनात्मक सारणियों, दार्शनिक विश्लेषण एवं नीति-संश्लेषण के माध्यम से यह तर्क प्रस्तुत करता है कि वास्तविक मानव पूर्णता अस्तित्वगत विद्रोह से नहीं, बल्कि स्वयं तथा अपने संबंधों की सम्यक् समझ से प्राप्त होती है।

**बीज शब्द:** अस्तित्ववाद, मानव संपूर्णता, मध्यस्थ दर्शन, सह-अस्तित्व, नई शिक्षा नीति 2020, समग्र शिक्षा, भारतीय दर्शन, जीवन विद्या

### 1. प्रस्तावना

मानव अस्तित्व सदैव गहन प्रश्नों की छाया में रहा है — मैं कौन हूँ? मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है? पूर्ण एवं सार्थक अस्तित्व का स्वरूप क्या है? समकालीन समाज में ये प्रश्न दार्शनिक विमर्श की सीमाओं को पार करके व्यक्ति के दैनिक अनुभव में प्रकट होते हैं — प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्थाओं के तनाव में, परिवारों के विघटन में, सामुदायिक बंधनों के क्षरण में, और पर्यावरणीय संकट की बढ़ती गंभीरता में। दार्शनिक की जिज्ञासा और आम नागरिक का जीवित संकट एक ही बिंदु पर मिलते हैं: एक सुसंगत और समेकित समझ का अभाव कि पूर्णतः मानवीय होने का अर्थ क्या है।

आधुनिक शिक्षा व्यवस्था ने अपने उल्लेखनीय विस्तार के बावजूद मुख्यतः संज्ञानात्मक उपलब्धि और आर्थिक उत्पादकता को प्राथमिकता दी है; मूल्य-संवर्धन, भावनात्मक बुद्धि और संबंधात्मक उत्तरदायित्व की उपेक्षा होती रही है। परिणाम एक ऐसा विरोधाभास है जिसे समकालीन मनोविज्ञान ने भलीभाँति प्रमाणित किया है: बाह्य रूप से सफल किंतु आंतरिक रूप से अशांत, भौतिक दृष्टि से संपन्न किंतु आत्मिक दृष्टि से निर्धन व्यक्ति (Deci & Ryan, 2000)। यह अंतर एक गहरी दार्शनिक रिक्तता को दर्शाता है।

यह शोध-पत्र इस रिक्तता को संबोधित करते हुए तीन केंद्रीय कार्य करता है। प्रथम, यह पश्चिमी अस्तित्ववाद — आधुनिकता के संकटों की प्रमुख दार्शनिक प्रतिक्रिया — का आलोचनात्मक मूल्यांकन करता है। द्वितीय, यह मध्यस्थ दर्शन की ओर उन्मुख होता है, जो अस्तित्व को मूलतः संबंधात्मक के रूप में समझता है। तृतीय, यह इन दार्शनिक विचारों को नई शिक्षा नीति 2020 से जोड़ते हुए एक सह-अस्तित्व आधारित शैक्षिक प्रतिमान प्रस्तावित करता है।

ISSN : 3108-0294

### 2. अस्तित्ववाद और आधुनिक मानव की स्थिति

#### 2.1 ऐतिहासिक एवं दार्शनिक संदर्भ

अस्तित्ववाद 19वीं और 20वीं शताब्दी के यूरोप में एक सुसंगत दार्शनिक आंदोलन के रूप में उभरा — औद्योगीकरण, धार्मिक सत्ता के पतन और दो विश्वयुद्धों की विनाशकारी अनुभूति के प्रति एक प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया के रूप में। यह मूलतः अर्थ-संकट का दर्शन था। सामाजिक विखंडन और वैचारिक थकान की पृष्ठभूमि में अस्तित्ववादी चिंतकों ने अमूर्त सार या सामूहिक विचारधारा के ऊपर व्यक्तिगत अस्तित्व की प्राथमिकता का उद्घोष किया।

अस्तित्ववाद के जनक माने जाने वाले सोरेन कीर्केगार्ड (1813–1855) ने व्यक्ति की अपरिहार्य आत्मनिष्ठता और अस्तित्व की विसंगति का सामना करने में व्यक्तिगत आस्था के महत्व पर बल दिया (Kierkegaard, as cited in

Kaufmann, 1956)। फ्रेडरिक नीत्शे (1844–1900) ने सभी प्रचलित नैतिक व्यवस्थाओं को चुनौती देते हुए 'ईश्वर की मृत्यु' की घोषणा की और व्यक्ति से अपनी 'सत्ता की इच्छा' (Will to Power) का उद्घोष करने का आह्वान किया (Nietzsche, 1883/1961)। ज्याँ-पाल सार्त्र (1905–1980) ने इस आंदोलन का सर्वाधिक प्रसिद्ध सूत्र दिया: 'अस्तित्व सार से पूर्व है' — अर्थात् मनुष्य पहले अस्तित्व में आता है, जगत में स्वयं से मिलता है, और तत्पश्चात् स्वयं को परिभाषित करता है (Sartre, 1956, p. 15)। आल्बेर कामू (1913–1960) ने 'अब्सर्ड' अर्थात् अर्थ की मानवीय चाहत और ब्रह्माण्ड की उदासीनता के मध्य मौलिक टकराव का सामना विद्रोह, स्वतंत्रता और जुनून के माध्यम से करने का प्रस्ताव किया (Camus, 1955)।

## 2.2 अस्तित्ववाद के मूल तत्व

अस्तित्ववादी चिंतन के केंद्रीय स्तंभ निम्नलिखित हैं:

- मौलिक व्यक्तिगत स्वतंत्रता: मनुष्य मौलिक रूप से स्वतंत्र है; कोई निश्चित मानव-प्रकृति या पूर्वनिर्धारित लक्ष्य नहीं है।
- उत्तरदायित्व: स्वतंत्रता के साथ अपने चयनों का पूर्ण उत्तरदायित्व आता है। ईश्वर, इतिहास या परिस्थिति को दोष नहीं दिया जा सकता।
- प्रामाणिकता: सर्वोच्च आकांक्षा प्रामाणिक रूप से जीना है — सामाजिक अनुरूपता की बजाय अपने चुने हुए मूल्यों के अनुसार।
- चिंता एवं अकेलापन: मौलिक स्वतंत्रता की जागरूकता से अस्तित्वगत चिंता (Angst) उत्पन्न होती है।
- अब्सर्डिटी: जीवन का कोई अंतर्निहित अर्थ नहीं; अर्थ मानवीय निर्माण है।

## 2.3 आलोचनात्मक सीमाएँ

अस्तित्ववाद की दार्शनिक शक्ति मानव-स्थिति के प्रति उसकी निर्भीक ईमानदारी में निहित है। तथापि अनेक विद्वानों ने मानव जीवन के उसके विवरण में महत्वपूर्ण सीमाएँ चिन्हित की हैं। व्यक्तिगत स्वायत्तता पर अस्तित्ववाद का बल सामाजिक संबंधों, सांस्कृतिक विरासत और सामुदायिक नैतिकता के संघटक महत्व को प्रायः विलुप्त कर देता है। जैसा कि नारीवादी दार्शनिक सिमोन द बोवुआर ने रेखांकित किया, 'अन्य' केवल स्वतंत्रता में बाधा नहीं, बल्कि आत्म-समझ की संघटक शर्त है (de Beauvoir, 1948/2011)। इसके अतिरिक्त, अस्तित्ववाद का प्रमुख यूरोपीय संदर्भ इसे एक सांस्कृतिक दृष्टि से विशिष्ट ढाँचा बनाता है जो गैर-पश्चिमी परंपराओं में केंद्रीय संबंधात्मक सत्तामीमांसाओं का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं करता (Radhakrishnan, 1951)।

## 3. भारतीय दार्शनिक परंपरा और संबंधात्मक स्व

भारतीय दर्शन एक मौलिक रूप से भिन्न मानव-विज्ञान प्रस्तुत करता है। एक पृथक, स्व-परिभाषित व्यक्ति से आरंभ करने की बजाय, यह मानव को संबंधों के एक विशाल जाल में — परिवार, समाज, ब्रह्माण्ड और अस्तित्व के परम आधार के साथ - स्थापित करता है।

उपनिषदों में आत्मा-ब्रह्म की एकता का सिद्धांत प्रतिपादित है: व्यक्तिगत आत्मा (आत्मन्) सार्वभौमिक आत्मा (ब्रह्म) से अंततः पृथक नहीं है (Radhakrishnan, 1951)। यह व्यक्तित्व का निषेध नहीं, बल्कि इस बात की पुष्टि है कि सच्चा व्यक्तित्व संबंध के विरुद्ध नहीं, बल्कि संबंध के माध्यम से साकार होता है। भगवद्गीता की निष्काम कर्म की अवधारणा — फलाकांक्षा-रहित कर्तव्याचरण — स्वतंत्रता को सामाजिक भूमिकाओं की अस्वीकृति में नहीं बल्कि उनके उत्कृष्ट निर्वाह में स्थापित करती है (Sharma, 2000)। बौद्ध दर्शन की प्रतीत्यसमुत्पाद की संकल्पना — आश्रित उत्पत्ति — इसी प्रकार यह प्रतिपादित करती है कि आत्मा सहित समस्त घटनाएँ अन्योन्याश्रय में उत्पन्न होती हैं।

'धर्म' की अवधारणा — जिसे प्रायः अपर्याप्त रूप से 'धर्म' के रूप में अनूदित किया जाता है — वास्तव में उस नैतिक एवं ब्रह्माण्डीय व्यवस्था को इंगित करती है जो जीवन को धारण करती है। 'ऋत' — इसका वैदिक पूर्ववर्ती — ब्रह्माण्ड को संचालित करने वाले प्राकृतिक नियमों का प्रतीक है। महाउपनिषद का प्रसिद्ध सूत्र 'वसुधैव कुटुम्बकम्' — 'समस्त विश्व एक परिवार है' — उस सार्वभौमिक नैतिक आदर्श को अभिव्यक्त करता है जिसमें नैतिक विचार का वृत्त समस्त प्राणियों तक विस्तृत है। ये सिद्धांत मिलकर एक ऐसी संबंधात्मक सत्तामीमांसा का निर्माण करते हैं जिसमें व्यक्तिगत समृद्धि और सामाजिक सामंजस्य परस्पर-विरोधी नहीं, बल्कि पारस्परिक रूप से संघटक हैं।

#### 4. मध्यस्थ दर्शन: सह-अस्तित्व की दार्शनिक स्थापना

##### 4.1 उद्भव एवं ढाँचा

मध्यस्थ दर्शन — जिसे 'जीवन विद्या' भी कहा जाता है — श्री ए. नागराज (1920–2016) द्वारा अमरकंटक, मध्य प्रदेश में दशकों की गहन साधना और अध्ययन के माध्यम से विकसित किया गया। नागराज की दार्शनिक प्रणाली एक सत्तामीमांसीय प्रतिज्ञा से आरंभ होती है: अस्तित्व ही सह-अस्तित्व है। ब्रह्माण्ड की प्रत्येक इकाई — परमाणु से लेकर आकाशगंगाओं तक, व्यक्तिगत जीवों से लेकर मानव समाजों तक — एक सर्वव्यापी अंतरिक्ष में परस्पर व्याप्ति और अन्योन्याश्रय की अवस्था में विद्यमान है (Nagraj, 2006)।

यह केवल एक तात्त्विक दावा नहीं, बल्कि इसके प्रत्यक्ष नैतिक और मानवशास्त्रीय निहितार्थ हैं। यदि अस्तित्व मूलतः संबंधात्मक है, तो पृथकता, प्रतिस्पर्धा या प्रभुत्व के इर्द-गिर्द संगठित मानव जीवन अनिवार्यतः अपूर्ण है — यह वास्तविकता की मूलभूत संरचना का ही विरोध करता है। इस दृष्टिकोण में पूर्णता, सह-अस्तित्वशील वास्तविकता की प्रकृति को समझने और उसके अनुरूप जीने में निहित है (Nagraj, 1999)।

### 4.2 मानव जीवन के चार आयाम

मध्यस्थ दर्शन मानव समृद्धि के चार समेकित आयामों की पहचान करता है। इनका संतुलन ही वह है जिसे यह परंपरा 'संपूर्णता' कहती है (Nagraj, 1999)। नीचे तालिका 1 में इनका विस्तृत विवरण प्रस्तुत है।

तालिका 1: मध्यस्थ दर्शन के अनुसार मानव जीवन के चार आयाम

आयाम	विवरण	असंतुलन के लक्षण	पूर्णता के मार्ग
<b>भौतिक</b> (Bhawtik)	शारीरिक आवश्यकताओं की संतुलित पूर्ति; स्वास्थ्य एवं जीविका	अति-भोग, अभाव, रोग	पर्याप्त एवं टिकाऊ पूर्ति; अधिकता से बचाव (Nagraj, 2006)
<b>मानसिक</b> (Manasik)	भावनात्मक स्थिरता, विचारों की स्पष्टता एवं सदाशयता	चिंता, भ्रम, मनोवैज्ञानिक विकार	आत्म-जागरूकता, आत्म-चिंतन, मूल्यों की स्पष्टता (Nagraj, 1999)
<b>सामाजिक</b> (Samajik)	परिवार व समाज में न्यायपूर्ण, विश्वासपूर्ण एवं सम्मानपूर्ण संबंध	पारिवारिक कलह, सामाजिक अलगाव, अन्याय	सभी संबंधों में विश्वास, स्नेह, सम्मान एवं न्याय का पोषण (Nagraj, 2006)
<b>आध्यात्मिक</b> (Adhyatmik)	सह-अस्तित्व का अनुभव; समग्र अस्तित्व के साथ एकता का बोध	निरर्थकता, अस्तित्वगत निराशा, शून्यवाद	समस्त अस्तित्व की अन्तर्सम्बद्धता पर ध्यानात्मक चिंतन (Nagraj, 2006)

ISSN : 3108-0294

जैसा कि तालिका 1 में दर्शाया गया है, मध्यस्थ दर्शन किसी एक आयाम को विशेषाधिकार नहीं देता। जो व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ किंतु सामाजिक रूप से अलग-थलग है, या आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत किंतु भावनात्मक रूप से अस्थिर है, उसे वास्तव में पूर्ण नहीं कहा जा सकता। पूर्णता के लिए चारों आयामों का समेकित संचालन आवश्यक है (Nagraj, 2006)।

### 4.3 असंतुलन का मूल कारण

मध्यस्थ दर्शन मानव पीड़ा के मूलभूत कारण को मानव-स्थिति में ही नहीं - जैसा कि अस्तित्ववाद प्रायः करता है- बल्कि एक विशिष्ट संज्ञानात्मक अवस्था में निहित मानता है: अपूर्ण या गलत समझ (भ्रांति)। जब व्यक्ति अस्तित्व की संबंधात्मक प्रकृति को नहीं समझता, तो वह भय, कामना और प्रतिस्पर्धा के आधार पर दूसरों और जगत से

संबंध स्थापित करता है। इससे वह अलगाव, संघर्ष और पारिस्थितिक विनाश उत्पन्न होता है जो आधुनिकता की विशेषता है (Nagraj, 2006)। तद्रूप उपाय विद्रोह या पलायन नहीं, बल्कि स्वाध्याय की एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति की समझ को विखंडन से एकीकरण की ओर क्रमशः रूपांतरित करती है।

### 5. दार्शनिक ढाँचों का तुलनात्मक विश्लेषण

निम्नलिखित तालिका 2 इस शोध-पत्र में परीक्षित तीन दार्शनिक परंपराओं के मध्य प्रमुख अंतरों और अभिसरण-बिंदुओं का संश्लेषण प्रस्तुत करती है। यह तुलनात्मक विश्लेषण प्रत्येक परंपरा के विशिष्ट योगदान और सीमाओं दोनों को स्पष्ट करता है तथा समकालीन भारत के लिए मध्यस्थ दर्शन की विशेष प्रासंगिकता को रेखांकित करता है।

तालिका 2: अस्तित्ववाद, भारतीय दर्शन और मध्यस्थ दर्शन का तुलनात्मक विश्लेषण

आयाम	पश्चिमी अस्तित्ववाद	भारतीय दर्शन	मध्यस्थ दर्शन
मूल प्रतिज्ञा	अस्तित्व सार से पूर्व है (Sartre, 1956)	आत्मा सार्वभौमिक ब्रह्म का अंश है (Radhakrishnan, 1951)	अस्तित्व ही सह-अस्तित्व है; सभी इकाइयाँ परस्पर सम्बद्ध हैं (Nagraj, 2006)
मानव पहचान	स्वायत्त, स्वयं-परिभाषित व्यक्तिव	सामाजिक, ब्रह्माण्डीय एवं धार्मिक सत्ता	समझने व सामंजस्य में सक्षम चेतन इकाई
स्वतंत्रता	मौलिक स्वतंत्रता; पूर्वनिर्धारित सार के बिना व्यक्तिगत चयन	धर्म, कर्म एवं ऋत के माध्यम से स्वतंत्रता	समझ पर आधारित उत्तरदायित्वपूर्ण स्वतंत्र चयन
जीवन का अर्थ	स्वयं-निर्मित; कोई पूर्वनिर्धारित अर्थ नहीं	धर्माचरण, कर्तव्य एवं मोक्ष से पूर्णता	संबंधात्मक सामंजस्य से सुख एवं समृद्धि
सामाजिक संबंध	गौण; स्व 'अन्य' से पहले आता है	परिवार, समाज व ब्रह्माण्ड स्व के संघटक हैं	विश्वास, सम्मान एवं न्याय सामाजिक आवश्यकताएँ हैं

चिंता का उपचार	प्रामाणिकता द्वारा; चिंता मानव-स्थिति का स्वाभाविक हिस्सा	वैराग्य एवं आत्म-साक्षात्कार द्वारा	स्व एवं जगत की सम्यक् समझ द्वारा
प्रमुख विचारक	Sartre, Camus, Kierkegaard, Heidegger	शंकर, गांधी, राधाकृष्णन, विवेकानन्द	श्री ए. नागराज (अमरकंटक, 1999–2006)
सीमाएँ	व्यक्ति पर अत्यधिक बल; सामाजिक ताने-बाने की उपेक्षा	कभी-कभी सोपानक्रमिक; वंचितों की सीमित सक्रियता	अपेक्षाकृत नवीन; सीमित अनुभव-जन्य सत्यापन

जैसा कि तालिका 2 से स्पष्ट होता है, तीनों परंपराएँ व्यक्तिगत जागरूकता के महत्व पर एकमत हैं, किंतु अन्य लोगों, समाज और ब्रह्माण्ड के साथ स्व के संबंध की समझ में वे महत्वपूर्ण रूप से भिन्न हैं। पश्चिमी अस्तित्ववाद, अपनी मुक्तिकामी अंतर्दृष्टियों के बावजूद, एक ऐसे स्व का निर्माण करने का जोखिम उठाता है जो स्वतंत्र तो है किंतु दिशाहीन। भारतीय दर्शन, अपने शास्त्रीय रूपों में, स्व को एक व्यापक ब्रह्माण्डीय और सामाजिक व्यवस्था में स्थापित करता है। मध्यस्थ दर्शन व्यक्तिगत समझ और स्वतंत्र चयन को सह-अस्तित्व की एक स्पष्ट सत्तामीमांसीय व्याख्या के साथ संयुक्त करने का प्रयास करता है — यह वस्तुतः एक सामाजिक-अन्तर्निहित अस्तित्ववाद प्रस्तुत करता है (Nagraj, 2006)।

## 6. नई शिक्षा नीति 2020: समग्र शिक्षा और दार्शनिक समन्वय

### 6.1 अवलोकन एवं आकांक्षाएँ

ISSN : 3108-0294

नई शिक्षा नीति 2020 तीन दशकों में भारत की शिक्षा प्रणाली का सर्वाधिक व्यापक सुधार है (Government of India [GoI], 2020)। इसकी प्रेरणादायी दृष्टि 'अच्छे मनुष्यों का विकास है जो तर्कसंगत सोच और आचरण, करुणा एवं सहानुभूति, साहस एवं लचीलेपन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं सृजनात्मक कल्पना, तथा दृढ़ नैतिक मूल्यों से संपन्न हों' (GoI, 2020, p. 4)। यह दृष्टि उस साधनवादी तर्क से स्पष्ट रूप से परे जाती है जो वैश्विक शिक्षा नीति पर हावी रहा है, यह प्रतिपादित करते हुए कि शिक्षा मूलतः एक नैतिक एवं मानवीय उद्यम है।

यह नीति कई परिवर्तनकारी प्रावधान प्रस्तुत करती है: एक बहुविषयी पाठ्यक्रम जो कला, विज्ञान और व्यावसायिक शिक्षा के मध्य विभाजन समाप्त करे; सभी स्तरों पर भारतीय ज्ञान प्रणालियों (IKS) का समावेश; सामाजिक-

भावनात्मक अधिगम (SEL) दक्षताओं का विकास; सतत विकास हेतु शिक्षा पर बल; और शिक्षक की भूमिका का ज्ञान-प्रेषक से अधिगम-सुगमकर्ता के रूप में पुनर्निर्माण।

### 6.2 मध्यस्थ दर्शन के साथ समन्वय

NEP 2020 और मध्यस्थ दर्शन के बीच दार्शनिक अभिसरण पर्याप्त है और इसे प्रमुख विषयगत क्षेत्रों में सटीक रूप से रेखांकित किया जा सकता है। तालिका 3 इस समन्वय को दर्शाती है।

तालिका 3: NEP 2020 के प्रावधानों और मध्यस्थ दर्शन के सिद्धांतों के मध्य समन्वय

विषय-क्षेत्र	NEP 2020 के प्रावधान	मध्यस्थ दर्शन के सिद्धांत
शैक्षिक लक्ष्य	शिक्षार्थी का समग्र विकास — संज्ञानात्मक, भावनात्मक, सामाजिक (GoI, 2020, §1.2)	भौतिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक आयामों का संतुलित विकास (Nagraj, 1999)
मूल्य शिक्षा	संवैधानिक मूल्य, सहानुभूति, नागरिक उत्तरदायित्व पाठ्यक्रम में (GoI, 2020, §22.10)	विश्वास, सम्मान, स्नेह एवं न्याय मूलभूत मानवीय मूल्य के रूप में (Nagraj, 2006)
भारतीय ज्ञान परंपरा	सभी स्तरों पर भारतीय ज्ञान प्रणालियों का समावेश (GoI, 2020, §4.27)	सह-अस्तित्व ढाँचे हेतु वैदिक, उपनिषदिक व धार्मिक परंपराओं का आधार (Radhakrishnan, 1951)
सामाजिक-भावनात्मक अधिगम	SEL दक्षताएँ: आत्म-जागरूकता, सहानुभूति, उत्तरदायी निर्णय-निर्माण (GoI, 2020, §22.8)	शैक्षिक लक्ष्य के रूप में स्व-अनुभूति (swa-anubhuti) एवं संबंधात्मक संवेदनशीलता (Nagraj, 1999)
पर्यावरणीय संवेदनशीलता	सतत विकास हेतु शिक्षा; ESD का सभी स्तरों पर समावेश (GoI, 2020, §22.9)	प्रकृति सह-अस्तित्वशील इकाई है; पारिस्थितिक व्यवस्था हेतु मानव उत्तरदायित्व (Nagraj, 2006)
बहुविषयी दृष्टिकोण	कला, विज्ञान, मानविकी व व्यावसायिक धाराओं के मध्य विभाजन समाप्ति (GoI, 2020, §11.4)	स्व, समाज, प्रकृति एवं अस्तित्व की समेकित समझ (Nagraj, 2006)

शिक्षक की भूमिका	सुगमकर्ता एवं मार्गदर्शक; सतत व्यावसायिक विकास (GoI, 2020, §5.3)	आत्म-समझ एवं संबंधात्मक प्रज्ञा की ओर अभिदर्शक (Nagraj, 1999)
------------------	--	---

तालिका 3 से स्पष्ट होता है कि NEP 2020 और मध्यस्थ दर्शन में 'समग्र शिक्षा' के प्रति केवल वाचिक प्रतिबद्धता नहीं, बल्कि मानव विकास की आवश्यकताओं की भी मूलतः समान समझ है। दोनों ढाँचे यह स्वीकार करते हैं कि बौद्धिक क्षमता अकेले एक शिक्षित व्यक्ति नहीं बनाती; दोनों मूल्यों, संबंधात्मक कौशलों और व्यापक प्राकृतिक एवं सामाजिक जगत के साथ जुड़ाव की भावना के संवर्धन पर बल देते हैं (GoI, 2020; Nagraj, 1999)। मध्यस्थ दर्शन जो कुछ NEP 2020 में नहीं है वह प्रदान करता है, वह है एक व्यवस्थित दार्शनिक आधार — अस्तित्व का एक सिद्धांत — जिससे ये शैक्षिक उद्देश्य व्युत्पन्न और न्यायसंगत किए जा सकते हैं।

### 7. सह-अस्तित्व आधारित शैक्षिक प्रतिमान: दर्शन से नीति तक

#### 7.1 सह-अस्तित्व शिक्षा के सिद्धांत

यदि शिक्षा का लक्ष्य संतुलित, उत्तरदायी और परिपूर्ण मनुष्यों का निर्माण करना है — जैसा कि NEP 2020 और मध्यस्थ दर्शन दोनों पुष्टि करते हैं — तो पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्र को नागराज (1999) द्वारा पहचाने गए मानव जीवन के चारों आयामों — भौतिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक — के विकास के इर्द-गिर्द संगठित किया जाना चाहिए।

सह-अस्तित्व आधारित शिक्षा मुख्यतः अपनी विषय-वस्तु से नहीं, बल्कि अपने लक्ष्य (telos) से पारंपरिक शिक्षा से भिन्न है: यह केवल ज्ञानवान स्नातक नहीं, बल्कि परिवार, समाज और प्रकृति के विवेकशील एवं संवेदनशील सदस्य बनाने का लक्ष्य रखती है। जैसा कि नागराज (2006) तर्क देते हैं, वास्तविक शिक्षा की कसौटी यह है कि वह व्यक्ति को दूसरों के साथ और प्रकृति के साथ सामंजस्य में जीने में सक्षम बनाती है या नहीं।

#### 7.2 शैक्षिक ढाँचा

तालिका 4: प्रस्तावित सह-अस्तित्व आधारित शैक्षिक ढाँचा

शैक्षिक तत्व	सह-अस्तित्व शिक्षा में प्रयोग	NEP 2020 से संबंध	अपेक्षित परिणाम
आत्म-चिंतन	दैनिक जर्नलिंग, माइंडफुलनेस, निर्देशित आत्म-जिज्ञासा सत्र	SEL दक्षताएँ (§22.8)	भावनात्मक संतुलन, आत्म-ज्ञान

मूल्य शिक्षा	नैतिकता की केस स्टडी, सेवा-अधिगम, सामुदायिक परियोजनाएँ	संवैधानिक मूल्य (§22.10)	नैतिक स्पष्टता, नागरिक उत्तरदायित्व
सहयोगात्मक अधिगम	समूह समस्या-समाधान, सांस्कृतिक संवाद, पीयर मेंटॉरिंग	बहुविषयी पाठ्यक्रम (§11.4)	सहानुभूति, टीमवर्क, सामाजिक सामंजस्य
पर्यावरणीय साक्षरता	पारिस्थितिक क्षेत्रकार्य, सततता परियोजनाएँ, प्रकृति विसर्जन	ESD समावेश (§22.9)	पर्यावरण प्रबंधन, सततता नैतिकता
भारतीय ज्ञान समावेश	उपनिषद, धर्म संकल्पनाएँ, जीवन विद्या कार्यशालाएँ	IKS समावेश (§4.27)	सांस्कृतिक पहचान, दार्शनिक आधार

तालिका 4 में प्रस्तुत ढाँचा विद्यमान अकादमिक विषय-वस्तु का विकल्प नहीं, बल्कि उसका पूरक है जो मानव विकास के उन आयामों को संबोधित करता है जो वर्तमान शिक्षा में अपर्याप्त सेवित हैं। यह जानबूझकर व्यावहारिक है: प्रत्येक तत्व सत्यापन योग्य अधिगम प्रक्रियाओं और मापनीय दक्षताओं से संबंधित है तथा NEP 2020 के विशिष्ट प्रावधानों से जुड़ा है।

### 7.3 शिक्षा में स्व-अनुभूति की भूमिका

सह-अस्तित्व आधारित शैक्षिक प्रतिमान के केंद्र में स्व-अनुभूति की संकल्पना है — अपनी स्वभाविक प्रकृति और अस्तित्व के व्यापक जाल में अपने स्थान की प्रत्यक्ष, अनुभव-जन्य जागरूकता (Nagraj, 1999)। संज्ञानात्मक अधिगम के विपरीत, जिसे व्याख्यानों या पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से प्रेषित किया जा सकता है, स्व-अनुभूति के लिए चिंतन, संवाद और ध्यानात्मक अभ्यास हेतु समर्पित समय चाहिए। जीवन विद्या कार्यशालाएँ — नागराज की शिक्षाओं से प्रत्यक्षतः विकसित और वर्तमान में कई भारतीय विश्वविद्यालयों में प्रचलित — इस प्रकार के अनुभव प्रदान करती हैं। प्रतिभागी संबंधों, अर्थ की अनुभूति और दूसरों के प्रति उत्तरदायित्व की अपनी समझ में महत्वपूर्ण बदलावों की रिपोर्ट करते हैं (Nagraj, 1999)।

## 8. सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व

### 8.1 सह-अस्तित्व और बहुलतावादी लोकतंत्र

भारत की लोकतांत्रिक पहचान उसकी बहुलता से अविभाज्य है — भाषा, धर्म, जाति, क्षेत्र और संस्कृति की उसकी असाधारण विविधता। यह विविधता एक साथ सांस्कृतिक समृद्धि का स्रोत और संभावित संघर्ष का स्थल है। इस तनाव की प्रमुख राजनीतिक प्रतिक्रियाएँ या तो एक समरूप राष्ट्रीय पहचान में विविधता का आत्मसात करना रही हैं या उसे प्रतिस्पर्धी विशेषवादों में विखंडित करना।

सह-अस्तित्व ढाँचा एक तीसरा मार्ग प्रस्तुत करता है: यह भेद की वास्तविकता और मूल्य को स्वीकार करता है, साथ ही भेद की पहचान को साझे अस्तित्व की गहरी जागरूकता में आधारित करता है। जब व्यक्ति यह समझ लेता है कि उसका अपना कल्याण दूसरों के कल्याण से अविभाज्य रूप से जुड़ा है — उन लोगों सहित जो भाषा, धर्म या संस्कृति में उससे भिन्न हैं — तो सामाजिक सामंजस्य की प्रेरणा बाह्य नहीं बल्कि अंतर्निहित बन जाती है (Nagraj, 2006)। यह अंतर्दृष्टि उन संवैधानिक मूल्यों का दार्शनिक आधार है जिन्हें NEP 2020 स्थापित करना चाहती है (GoI, 2020, §22.10)।

### 8.2 अति-व्यक्तिवाद और उपभोक्तावाद का प्रतिकार

समकालीन भारत के समक्ष सबसे महत्वपूर्ण सांस्कृतिक चुनौतियों में से एक अति-व्यक्तिवाद और उपभोक्तावाद का तीव्र विस्तार है — मूल्यों का एक ऐसा समुच्चय जो मानव-मूल्य का मूल्यांकन मुख्यतः व्यक्तिगत उपलब्धि और भौतिक संचय के संदर्भ में करता है। सकारात्मक मनोविज्ञान में शोध पुष्टि करता है कि एक साधारण सीमा से परे, भौतिक समृद्धि में वृद्धि से कल्याण में तद्रूप वृद्धि नहीं होती; संबंधात्मक गुणवत्ता, अर्थ की भावना और सामुदायिक संलग्नता मानव समृद्धि के कहीं अधिक शक्तिशाली पूर्वसूचक हैं (Seligman, 2011)।

मध्यस्थ दर्शन का सह-अस्तित्व ढाँचा संरचनात्मक रूप से उपभोक्तावाद के साथ असंगत है: यदि अस्तित्व मूलतः संबंधात्मक है, तो प्रतिस्पर्धात्मक संचय के इर्द-गिर्द संगठित जीवन-शैली न केवल सामाजिक रूप से हानिकारक है, बल्कि अस्तित्वगत दृष्टि से भी भ्रामक है (Nagraj, 2006)। इस समझ पर आधारित शिक्षा स्वाभाविक रूप से पर्याप्तता, पारस्परिकता और देखभाल के मूल्यों का पोषण करेगी।

### 8.3 सामाजिक न्याय का आयाम

मानव पूर्णता को संबोधित करने का दावा करने वाले किसी भी दार्शनिक ढाँचे को उन संरचनात्मक विषमताओं से टकराना होगा जो लोगों की पूरी श्रेणियों को पूर्णता की शर्तों तक पहुँचने से रोकती हैं। भारतीय दार्शनिक परंपराओं का उपयोग कभी-कभी जाति-श्रेणी और लैंगिक अधीनता को उचित ठहराने के लिए किया गया है — एक आलोचना जिसे गंभीरता से लिया जाना चाहिए (Sharma, 2000)। मध्यस्थ दर्शन इन प्रयोगों को स्पष्ट रूप से अस्वीकार करता है: प्रत्येक मनुष्य की एक चेतन इकाई के रूप में समान गरिमा की उसकी पुष्टि, जो समझने में सक्षम

है, सैद्धांतिक रूप से एक मजबूत सामाजिक न्याय का आधार है (Nagraj, 2006)। सह-अस्तित्व आधारित शिक्षा को इसलिए दार्शनिक गहराई को सामाजिक संरचनाओं की आलोचनात्मक जागरूकता के साथ संयुक्त करना होगा।

## 9. निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-पत्र ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि न तो पश्चिमी अस्तित्ववाद और न ही मुख्यधारा की शैक्षिक व्यवस्था मानव पूर्णता का पर्याप्त विवरण प्रस्तुत करती है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और प्रामाणिकता की अस्तित्ववाद की पुनर्प्राप्ति एक वास्तविक उपलब्धि है, किंतु सामाजिक और संबंधात्मक संदर्भों से व्यक्ति का इसका अमूर्तन एक ऐसे स्व को जन्म देता है जो स्वतंत्र तो है किंतु दिशाहीन — समसामयिक आधुनिकता की अलगाव और अर्थ-संकट से यह निदान पुष्ट होता है। भारतीय दार्शनिक परंपराएँ और विशेष रूप से मध्यस्थ दर्शन एक अधिक संपूर्ण विवरण प्रस्तुत करते हैं: जिसमें व्यक्तिगत चेतना को नकारा नहीं जाता, बल्कि उसे उस संबंधों के जाल में — और उससे संवर्धित — स्थापित किया जाता है जो अस्तित्व को ही संघटित करते हैं।

मध्यस्थ दर्शन और नई शिक्षा नीति 2020 के बीच समन्वय आकस्मिक नहीं है। दोनों इस पहचान से उभरते हैं कि भारत की शिक्षा प्रणाली को केवल अर्थव्यवस्था की नहीं, बल्कि मानव-व्यक्तित्व के पूर्ण विकास की सेवा करनी चाहिए। इस शोध-पत्र में प्रस्तावित सह-अस्तित्व आधारित शैक्षिक प्रतिमान — नागराज के दर्शन में आधारित और NEP 2020 के ढाँचे द्वारा समर्थित — उस अर्थ-संकट के प्रति एक सुसंगत, व्यावहारिक रूप से प्रयोज्य और दार्शनिक दृष्टि से कठोर प्रतिक्रिया प्रस्तुत करता है जो समकालीन जीवन की परिभाषित विशेषता बन गया है।

बढ़ते विखंडन — सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिस्थितिक और मनोवैज्ञानिक — से चिह्नित एक विश्व में, सह-अस्तित्व परंपरा के दार्शनिक और शैक्षणिक संसाधन अतीत की ओर एक नोस्टैल्जिक प्रत्यावर्तन नहीं, बल्कि एक वास्तव में मानवीय भविष्य की ओर एक अनुशासित मार्ग प्रस्तुत करते हैं। मानव जीवन की संपूर्णता, यह शोध निष्कर्ष देता है, पृथकता या विद्रोह में नहीं, बल्कि समझ की प्रगतिशील गहराई में — स्वयं की, अपने संबंधों की, और समस्त अस्तित्व की सह-अस्तित्वशील प्रकृति की — प्राप्त होती है।

## संदर्भ सूची (References)

Camus, A. (1955). *The myth of Sisyphus* (J. O'Brien, Trans.). Penguin Books. (Original work published 1942)

de Beauvoir, S. (2011). *The ethics of ambiguity* (B. Frechtman, Trans.). Open Road Media. (Original work published 1948)

Deci, E. L., & Ryan, R. M. (2000). The 'what' and 'why' of goal pursuits: Human needs and the self-determination of behavior. *Psychological Inquiry*, 11(4), 227–268. [https://doi.org/10.1207/S15327965PLI1104\\_01](https://doi.org/10.1207/S15327965PLI1104_01)

Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Education. [https://www.education.gov.in/sites/upload\\_files/mhrd/files/NEP\\_Final\\_English\\_0.pdf](https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf)

Kaufmann, W. (Ed.). (1956). *Existentialism from Dostoevsky to Sartre*. Meridian Books.

Nagraj, A. (1999). *Jeevan vidya: Ek parichay* [जीवन विद्या: एक परिचय]. Madhyasth Darshan Prakashan.

Nagraj, A. (2006). *Madhyasth darshan (sah-astitva darshan)* [मध्यस्थ दर्शन (सह-अस्तित्व दर्शन)]. Madhyasth Darshan Prakashan.

Nietzsche, F. (1961). *Thus spoke Zarathustra* (R. J. Hollingdale, Trans.). Penguin Books. (Original work published 1883)

Radhakrishnan, S. (1951). *Indian philosophy* (Vols. 1–2). George Allen & Unwin.

Sartre, J.-P. (1956). *Being and nothingness: A phenomenological essay on ontology* (H. E. Barnes, Trans.). Washington Square Press. (Original work published 1943)

Seligman, M. E. P. (2011). *Flourish: A visionary new understanding of happiness and well-being*. Free Press.

Sharma, C. D. (2000). *A critical survey of Indian philosophy*. Motilal Banarsidass.